इंद्रधनुष

डा. महेंद्रभटनागर-विरचित प्रकृति-काव्य

.

अनुक्रम

.

राग-संवेदन

1 आह्लाद

2 आसक्ति

3 मंत्र-मुग्ध

4 हवा

अनुभूत-क्षण

5 अभिलषित

6 बसंती हवा

7 कुहराच्छादित-नभ

8 शीतार्द्र

9 हेमंत

10 सुख-बोध

11 उपकृत

12 उत्सव

आहत युग

13 वर्षा-पूर्व

जीने के लिए

14 गौरैया

15 उमंग

16 सम्मोहन

17 अनुभूत: अस्पर्शित

जूझते हुए

18 कचनार

19 प्रियकर

20 भोर

21 अ-तटस्थ

संवर्त

22 पातालपानी की उपत्यका से

23 हेमंती धूप

24 हिमागम

25 जी लिया बसंत

संतरण

26 उषा-दूतिका

27 फागुन में सावन

28 स्वर्ण की सौगात

29 भोर का गीत

30 माँझी

31 उषा रानी

32 सुहानी सुबह

33 लघु जीवन

34 फाग

35 वर्षा

36 भोर होती है

37 रात भर

जिजीविषा

38 भोर

39 साँझ

40 ज्वार और नाविक

मधुरिमा

41 शिशिर की रात (1)

42 शिशिर की रात (2)

43 बसंत

44 आ गया सावन

45 बरखा की रात
46 मेघ और शशि
47 ज्योत्स्ना
48 पूनम
49 झलकता रूप
50 समर्पण
51 बड़ा कठिन
52 कलानिधि
53 अमावस की अँधेरी में
54 ओ चाँद
नयी चेतना
55 मेघ-गीत
56 बरगद
टूटती शृंखलाएँ
57 रात का आलम
58 सुनहरी आभा
59 प्रभात
60 ज्वार भर आया
61 धूल-श्री
अंतराल
62 पतझर और बसंत
63 प्रभात की चाह
64 प्रभात
65 री हवा
66 रात
67 ढलती रात
68 मेघों से
69 घटाएँ
70 जल-वृष्टि
विहान
71 प्रात
72 संध्या

73 बरसात

तारों के गीत

74 तारक
75 जलते रहो
76 तारों से
77 तिमिर-सहचर तारक
78 दीपावली और नक्षत्र-तारक
79 तारे और नभ
80 संध्या के पहले तारे से
81 अमर सितारे
82 उल्कापात
83 ज्योति-केन्द्र
84 नश्वर तारक
85 नभ-उपवन
86 इन्द्रजाल
87 ज्योति-कुसुम
88 जलते रहना
89 शीताभ
90 नृत्त
91 अबुझ
92 प्रिय तारक
93 मेघकाल में
94 जगते तारे

.

कविताएँ

.

(1) आह्लाद

.

बदली छायी

बदली छायी!

.

दिशा-दिशा में
बिजली कौंधी,
मिट्टी महकी
सोंधी-सोंधी!
.
युग-युग
विरह-विरस में
डूबी,
एकाकी
घबरायी
ऊबी,
अपने
प्रिय जलधर से
मिल कर,
हाँ, हुई सुहागिन
धन्य धरा,
मेघों के रव से
शून्य भरा!
.
वर्षा आयी
वर्षा आयी!
उमड़ी
शुभ
घनघोर घटा,
छायी
श्यामल दीप्त छटा!
.
दुलहिन झूमी

घर-घर घूमी
मनहर स्वर में
कजली गायी!
.
बदली छायी
वर्षा आयी!
• •
.
(2) आसक्ति
.
भोर होते —
द्वार वातायन झरोखों से
उचकतीं-झाँकतीं उड़तीं
मधुर चहकार करतीं
सीधी सरल चिड़ियाँ
    जगाती हैं,
    उठाती हैं मुझे!
रात होते
निकट के पोखरों से
आ - आ
कभी झींगुर; कभी दर्दुर
गा - गा
    सुलाते हैं,
    नव-नव स्वप्न-लोकों में
    घुमाते हैं मुझे!
दिन भर —
रँग-बिरंगे दृश्य-चित्रों से
मोह रखता है

अनंग-अनंत नीलाकाश!
रात भर —
नभ-पर्यंक पर
रुपहले-स्वर्णिम सितारों की छपी
चादर बिछाए
सोती ज्योत्स्ना
कितना लुभाती है!
अंक में सोने बुलाती है!
.
ऐसे प्यार से
मुँह मोड़ लूँ कैसे?•
धरा - इतनी मनोहर
छोड़ दूँ कैसे?
• •
.
(3) मंत्र-मुग्ध
.

गहन पहेली,
ओ लता - चमेली!
.
अपने
फूलों में / अंगों में
इतनी मोहक सुगन्ध
अरे,
कहाँ से भर लायीं!
.
ओ श्वेता!
ओ शुभ्रा!

कोमल सुकुमार सहेली!
इतना आकर्षक मनहर सौन्दर्य
कहाँ से हर लायीं!
धर लायीं!
.
सुवास यह
बाहर की, अन्तर की
तन की, आत्मा की
जब-जब
करता हूँ अनुभूत —
भूल जाता हूँ
सांसारिकता,
अपना अता-पता!
.
कुछ क्षण को इस दुनिया में
खो जाता हूँ,
तुमको एकनिष्ठ
अर्पित हो जाता हूँ!
.
ओ सुवासिका!
ओ अलबेली!
ओ री, लता - चमेली!
• •
.
(4) हवा
.
ओ प्रिय
सुख-गंध भरी
मदमत्त हवा!

मेरी ओर बहो —
हलके-हलके!
.
बरसाओ
मेरे
तन पर, मन पर
शीतल छींटें जल के!
.
ओ प्यारी
लहर-लहर लहराती
उन्मत्त हवा!
निःसंकोच करो
बढ़ कर उष्ण स्पर्श
मेरे तन का!
.
ओ, सर-सर स्वर भरती
मधुरभाषिणी
मुखर हवा!
चुपके-चुपके
मेरे कानों में
अब तक अनबोला
कोई राज़ कहो
मन का!
.
आओ!
मुझ पर छाओ!
खोल लाज-बंध
आज

आवेष्टित हो जाओ,
आजीवन
अनुबन्धित हो जाओ!
• •
.
(5) अभिलषित
.
दिन भर —
धरती पर लेटी पसरी
रेशम जैसी
चिकनी-चिकनी दूब से,
आँगन में उतरी
खुली-खुली
फैली बिखरी
हेमा-हेमा धूप से,
यह अलबेला
एकाकी
जम कर खेला !
दिन भर खेला !
.
दिन भर —
ताज़े टटके गदराए
फूलों की छाँह में,
हरिआए - हरिआए
शूलों की बाँह में,
उनकी मादक-मादक गंधों में
अटका-भटका;
झूला-भूला !

शर्मीली-शर्मीली भोली
कलियों की,
लम्बी-लम्बी पतली-पतली
फलियों की,
डालों-डालों झूला !
लिपट-लिपट कर
टहनी-टहनी पत्ती-पत्ती झूला !
दिन भर झूला !
.
दिन भर —
सुन्दर रंगों छापों वाली साड़ी पहने
उड़ती मुग्धा तितली पर,
वासन्ती रंग-रँगी
मदमाती प्रेम-प्रगल्भा
प्रौढ़ा सरसों पर,
जी भर राँचा,
संग-संग खेतों-खेतों नाचा !
दिन भर नाचा !
.
दिन भर —
इमली के / अमरूदों के पेड़ों पर
चोरी-चोरी डोला,
झरबेरी के कानों में
जा-जा,
चुपके-चुपके
जाने क्या-क्या बोला !
दिन भर डोला !
• •

.
(6) बसंती हवा
.
तन को
छूती गुज़री
जो मतवाली युवा हवा—
इतनी अच्छी
पहले कभी
न, सचमुख, मुझे लगी !
.
मन को
ठंडक पहुँचाती गुज़री
जो मदहोश हवा
ऐसी मोहक
पहले कभी
न, सचमुच, मुझे लगी !
.
बिलकुल अपनी सगी-सगी,
बेहद.... बेहद प्यार पगी,
ठगने आयी थी; स्वयं ठगी !
.
लिपट-लिपट कर
बाहों - बाहों
झूली,
सिहर-सिहर कर
झूमी,
सुधबुध भूली
वस्त्रों से खेली,
केशों से खेली,

अंग - अंग से खेली !
ईश्वर जाने !
अल्हड़पन में
कितनी मदगंधा ले ली !
• •
.
(7) कुहराच्छादित-नभ
.
पड़ा हुआ है कम्बल ओढ़े
पसरा-पसरा जागा अम्बर !
.
दिन चढ़ आया कितना; फिर भी
हिलने का लेता नाम नहीं,
केवल सोना - सोना; इसका,
किंचित भी कोई काम नहीं,
ठंड अधिक का किये बहाना
पक्का बना हुआ घन-चक्कर !
.
गर्म दुपहरी आने पर अब
लगता, सचमुच, कुछ हिला-डुला,
दूर क्षितिज की सीमाओं पर
दिखता कम्बल भी खुला-खुला,
तनिक क्षणों में, बाँधेगा लो
सारा अपना बोरा-बिस्तर !
• •
.
(8) शीतार्द्र
.
उतरी धीमे-धीमे
फिर-फिर ओस रात-भर !

.
हिम-शीतल सन्नाटा
छाया सुप्त धरा पर,
फूलों - पत्तों नाची
प्रीति-पुतरिका बनकर,
कारीगर कुहरे ने
किया सृजन कनात-घर !
.
यहाँ-वहाँ जगह-जगह
बिखरे जल-कण हीरे,
घात लगाये फिरते
पवन झकोरे धीरे,
पहरेदार सरीखा
जागा, हर प्रपात, झर !
.
ख़ूब जमी है महफ़िल
अध्यक्ष बनी रजनी,
प्रिय को कस कर बाँधे
जागी-सोयी सजनी,
किसी दिशा में दबका
बैठा, नव प्रभात, डर !
• •
.
(9) हेमन्त
.
भीगी-भीगी भारी रात,
नींद न आती सारी रात !
.
घोर अँधेरा चारों ओर

दूर अभी तो लोहित भोर
थमा हुआ है सारा शोर
ऐसे मौसम में चुप क्यों हो,
कहो न कोई मन की बात !
.
कुहरा बरस रहा चुपचाप
अतिशय उतरा नभ का ताप
व्योम-धरा का मौन मिलाप
ऐसे लमहों में पास रहो,
थर-थर काँपेगा हिम गात !
.
नीरवता का मात्र प्रसार
तरुदल हिलते खेतों पार
जब-तब बज उठते हैं द्वार
खोल गवाक्ष न झाँको बाहर,
मादक पवन लगाये घात !
• •
.
(10) सुख-बोध
.
बड़ी प्रतीक्षा के बाद खिले हैं
गमले में फूल,
पीले - पीले पुलकित फूल
झबरीले गेंदे के
टटके फूल !
बड़ी प्रतीक्षा के बाद खिले हैं
जीवन में फूल,
कोमल - कोमल गद्-गद् फूल,
मादन - मन भावों के

मादक फूल !

.

बड़े दिनों के बाद
मिले हैं
सावन - भादों के उपहार,
बड़े दिनों के बाद
सजे हैं
दरवाज़ों पर बंदनवार !

• •

.

(11) उपकृत

.

इन फूलों ने
मेरे घर - आँगन में
ख़ुशबू भर दी है,

.

एकाकी बोझिल
जीवन की
सारी तनहाई
हर ली है !

.

इन फूलों को
खिलने दो,
डालों पर
हिलने दो !

.

मेरे जर्जर तन से
ऊसर मन से
भावाकुल

मिलने दो !

.

इन फूलों ने
जग के आँगन को
महकाया है,
रंग - बिरंगी आभा से
लहकाया है !

.

इन फूलों को
खिलने दो,
डालों के झूलों पर
हिलने दो !
दुनिया-भर के लोगों से
हँस-हँस मिलने दो,
लिपट-लिपट कर
मिलने दो !

.

इन फूलों ने
भयकर धरती
मनहर कर दी है,
हाँ, हाँ.....
नाना प्रेम-प्रसंगों से
भर दी है !

.

इन फूलों को
पर्वत - पर्वत
खिलने दो,
मरुथल - मरुथल

खिलने दो,
जंगल - जंगल
खिलने दो,
बस्ती - बस्ती
खिलने दो,
घर - घर
दर - दर
खिलने दो !
• •
.
(12) उत्सव
.
फूलो !
रंग - बिरंगे फूलो !
गमले - गमले फूलो
क्यारी - क्यारी फूलो
आनन्द - मगन हो फूलो !
.
फूलो !
रंग - बिरंगे फूलो !
डालों - डालों झूलो
भर - भर पेंगें झूलो
मंद हवा में झूलो !
.
फूलो !
रंग - बिरंगे फूलो !
नव कलियों को छू लो
पत्ती - पत्ती छू लो
हारित चुनरी छू लो !

• •

(13) वर्षा-पूर्व

आज छायी है घटा
काली घटा !

महीनों की
तपन के बाद
अहर्निश
तन-जलन के बाद,
हवाओं से लिपट
लहरा उठा
ऊमस भरा वातावरण-आँचर !
किसी ने
डाल दी तन पर
सलेटी बादलों की
रेशमी चादर !

मोह लेती है छटा,
मोद देती है घटा,
काली घटा !

• •

(14) गौरैया

गौरैया
बड़ी ढीठ है,
सब अपनी मर्ज़ी का करती है,
सुनती नहीं ज़रा भी

मेरी,
बार-बार कमरे में आ
चहकती है ; फुदकती है,
इधर से भगाऊँ
तो इधर जा बैठती है,
बाहर निकलने का
नाम ही नहीं लेती !
जब चाहती है
आकाश में
फुर्र से उड़ जाती है,
जब चाहती है
कमरे में
फुर्र से घुस आती है !
खिड़कियाँ-दरवाजें बंद कर दूँ ?
रोशनदानों पर गत्ते ठोंक दूँ ?
पर, खिड़कियाँ-दरवाज़े भी
कब-तक बंद रखूँ ?
इन रोशनदानों से
कब-तक हवा न आने दूँ ?
गौरैया नहीं मानती।
.
वह इस बार फिर
मेरे कमरे में
घोंसला बनाएगी,
नन्हें-नन्हें खिलौनों को
जन्म देगी,
उन्हें

जिलाएगी.... खिलाएगी !
.
मैंने
बहुत कहा गौरैया से—
मैं आदमी हूँ
मुझसे डरो
और मेरे कमरे से भाग जाओ !
.
पर,
अद्भुत है उसका विश्वास
वह मुझसे नहीं डरती,
एक-एक तिनका लाकर
ढेर लगा दिया है
रोशनदान के एक कोने में !
.
ढेर नहीं,
एक-एक तिनके से
उसने रचना की है
प्रसूति-गृह की।
सचमुच, गौरैया !
कितनी कुशल वास्तुकार हो तुम,
अनुभवी अभियन्ता हो !
यह घोंसला
तुम्हारी महान कला-कृति है,
पंजों और चोंच के
सहयोग से विनिर्मित,
तुम्हारी साधना का प्रतिफल है !
कितना धैर्य है

गौरैया, तुममें।
.
इस घोंसले में
लगता है —
ज़िन्दगी की
तमाम ख़ुशियाँ और बहारें
सिमट आने को
आतुर हैं !
.
लेकिन ; यह —
सजावट-सफ़ाई पसन्द आदमी
सभ्य और सुसंस्कृत आदमी
कैसे सहन करेगा, गौरैया
तुम्हारा
दिन-दिन उठता-बढ़ता नीड़ ?
वह एक दिन
फेंक देगा इसे
कूड़ेदान में !
.
गौरैया !
यह आदमी है
कला का बड़ा प्रेमी है, पारखी है !
इसके कमरे की दीवारों पर
तुम्हारे चित्र टँगे हैं !
चित्र —
जिनमें तुम हो,
तुम्हारा नीड़ है,
तुम्हारे खिलौने हैं !

.
गौरैया
भाग जाओ,
इस कमरे से भाग जाओ !
अन्यथा ;
यह आदमी
उजाड़ देगा तुम्हारी कोख !
.
एक पल में
ख़त्म कर देगा
तुम्हारे सपनों का संसार !
और तुम
यह सब देखकर
रो भी नहीं पाओगी।
सिर्फ़
चहकोगी,
बाहर-भीतर भागोगी,
बेतहाशा
बावली-सी
भूखी-प्यासी !
• •
.
(15) उमंग
.
सान्ध्य काल
धूप-छाँह बीच,
गिर रही फुहार
रिमझिमा रहा
गगन !

.
बार-बार
द्वार थपथपा रहा
समय / अ-समय
किस क़दर
उतावला पवन !
.
दूर-पास
खेत हाट चैक में
अधीर
जान-बूझ
भीग-भीग
थरथरा रहा
प्रिया बदन!
• •
.
(16) सम्मोहन
.
मधु-ऋतु
आगमन पर
बंधु,
इतराओ नहीं !
इतना भरोसा मत करो
मधु-ऋतु मोहिनी पर,
इस क़दर
धरती-गगन में झूम कर
उल्लास-रस गाओ नहीं !
.
अस्तित्व

इसकी सुरभि का
कुछ दिनों का,
भोग-अनुभव
कुछ क्षणों का !
विश्वास कर
निर्भर नहीं इतना रहो
मन !
भावना की तीव्र धारों में
नहीं इतना बहो
मन !
.
यह अल्प-जीवी
बिखर कर
छितर जाएगी,
रख न पाओगे
तनिक भी
बाँध कर तुम !
यह मनोरम गंध
मधु-ऋतु की !
वस्तु —
लहराती हुई,
आकाश की ऊँचाइयाँ
छूती हुई,
उन्मुक्त अल्हड़
मंद शीतल वायु की
जुड़वाँ सहेली !
.
मत करो इच्छा

समझने-जानने की
गूढ उलझी जटिल और अबूझ
पहेली !
.
चेतना हत
भूल कर
होना न सम्मोहित,
समर्पित;
स्पर्श पा
मधुमास का,
उसकी सुखद
मधु-श्वास का !
• •
.
(17) अनुभूत: अस्पर्शित
.
ओ,
लहकती बहकती
बसन्ती हवाओ !
छुओ मत मुझे
इस तरह
मत छुओ !
.
अनुराग भर-भर
गुँजा फागुनी स्वर
न ठहरो
न गुज़रो
इधर से
बसन्ती हवाओ !

.
भटकती बहकती
बसन्ती हवाओ !
मुझे ना डुबाओ
उफ़नते उमड़ते
भरे पूर रस के
कुओं में, सरों में,
मधुर रास-रज के
कुओं में, सरों में,
छुओ मत मुझे
इस तरह
मत छुओ।
ओ, बसन्ती हवाओ !
• •
.
(18) कचनार
.
पहली बार
मेरे द्वार
रह-रह
गह-गह
कुछ ऐसा फूला कचनार
गदराई हर डार !
इतना लहका
इतना दहका
अन्तर की गहराई तक
पैठ गया कचनार !
.
जामुन रंग नहाया

मेरे गैरिक मन पर छाया
छज्जों और मुँडेरों पर
जम कर बैठ गया कचनार !
.
पहली बार
मेरे द्वार
कुछ ऐसा झूमा कचनार
रोम-रोम से जैसे उमड़ा प्यार !
अनगिन इच्छाओं का संसार !
पहली बार
ऐसा अद्भुत उपहार !
• •
.
(19) प्रियकर
.
इस बहार में
गुलाब !
क्यों उदास ?
बार-बार
ले रहे उसाँस।
है विकीर्ण
क्यों नहीं
विलास की सुवास ?
.
ओ गुलाब !
आज
मत रहो उदास
इर क़दर उदास !
.

दो मिठास
प्राण को
हुलास मन
उदार बन
पुनीत प्यार से
सुधा विहार से
रहो प्रमोद-सिक्त
        पास-पास !
        पूर्ण जब विकास
        मत रहो उदास !
•   •
.
(20) भोर
.
सृष्टि का
कम्बल
हटाता
आ रहा है
        भोर !
.
करता
अनावृत
सुप्त
नग्न पहाड़ियों को,
सकपकाता —
युगनद्ध
झबरीली
झपकती झाड़ियों को।
.

वे
अरे,
जाएँ कहाँ
किस ओर !
.
नटखट भोर की
इस बाल-क्रीड़ा पर
कर रहे
पशु और पक्षी
शोर !
• •
.
(21) अ-तटस्थ
.
पत्तों के घूँघट में
अपने को
भरसक ढाके
गोरी गोभी !
बेरहमी से
काट गया रे
कल्लू लोभी !
.
जो पालक
वह भक्षक
कितना छल ?
कहता —
सब्ज़ीमंडी में
बेचूंगा कल !
चल चल

मेरी हँसिया चल !

• •

.

(22) पातालपानी की उपत्यका से

.

तुम्हारे अंक में
विश्रांति पाने आ गया
भटका प्रवासी
मैं !

.

अनावृत वक्ष-ढालों पर
सहज उतरूँ
सबल चट्टान रूपी बाँह दो,
शीतल अतल-की छाँह दो !
तप्त अधरों को
सरस जलधार का
सुख-स्पर्श दो,
युग मूक
मन को हर्ष दो,
अतृप्त
आत्मा को सुखद
अनुराग-संगम बोध दो !
एकांत में
कल-कल मधुर संगीत से
दो
स्वप्न का अधिवास बहुरंगी,
ओ गहन घाटी !
आ गया हूँ मैं

तुम्हारा प्राण
चिर-संगी !
.
कुछ क्षणों को बाँध लूँ
अल्हड़ तुम्हारी धार से
बेबस उमड़ती भावना का ज्वार !
फिर इस जन्म में
इस ओर
आना हो, न हो !
.
क्या मुझ प्रवासी का
नहीं इतना तनिक अधिकार
छोड़ जाऊँ जो
प्यार सूचक
चिन्ह ही
दो ..
चार .... ?
• •
.
(23) हेमन्ती धूप
.

कितनी सुखद है
धूप हेमन्ती !
.
सुबह से शाम तक
इसमें नहाकर भी
हमारा जी नहीं भरता,
विलग हो

दूर जाने को
तनिक भी मन नहीं करता,
अरे, कितनी मधुर है
धूप हेमन्ती !
.
प्रिया-सम
गोद में इसकी
चलो
सो जायँ,
दिन भर के लिए खो जायँ !
.
कितनी काम्य
कितनी मोहिनी है
धूप हेमन्ती !
कितनी सुखद है
धूप हेमन्ती !
• •
.
(24) हिमागम
.
सच, अब नहीं !
सौगन्ध ले लो
अब नहीं !
अवहेलना-अवमानना
हरगिज़ नहीं !
ज्योतिर्मयी
सुखदा
सुनहरी धूप
आओ !

.
थपथपाओ मत,
खुले हैं
द्वार, वातायन, झरोखे सब,
उपेक्षा अब नहीं
सौगन्ध ले लो।
अब नहीं !
.
प्रतीक्षातुर तुम्हारा
भेंट लो;
प्रति अंग को
उत्तेजना दो,
उष्णता दो !
ओ शुभावह धूप
अंक समेट लो,
हेमाभ कर दो !
.
ओढ़ लूँ तुमको
बहे जब तक हिमानिल,
मन कहे तब-तक
दिवा-स्वप्निल तुम्हारे लोक में
खोया रहूँ,
जी भर दहूँ, जी भर दहूँ !
तन रश्मियाँ भर दो !
.
सुनहरी धूप
आओ !
अब नहीं

अवहेलना-अवमानना,
हरगिज़ नहीं !
सौगन्ध ले लो !
• •
.
(25) जी लिया बसन्त
.
हमने भी
जी लिया बसन्त !
सुना था—
बसन्त में फूल खिलते हैं,
हर डाल कोंपलों
नव पल्लवों से लद जाती है,
नव-रस से भर जाती है !
.
बसन्त में
मदिर-मधुर भावनाओं के
फूल खिलते हैं,
सारी सृष्टि
रंग-बिरंगे परिधानों से सज जाती है,
अन्तर में विविध स्वर
अनायास बज उठते हैं,
सब तरफ़ अजानी झंकारों की गूँज
लहरती है
छा जाती है !
हर सुनसान
अभिनव स्पन्दन पा जाता है,
हर अंधकार

आशा के स्वर्णिम आलोक से
जगमगा जाता है !
हर श्लथ-निश्चेष्ट हृदय
अपरिचित उमंगों से
सिहरता
कसमसाता है !
.
हर अधर
अभोगे दर्द की अनुभूति पा
फड़फड़ाता है
गुनगुनाता है !
हाथ
कल्पना के उच्चतम शिखरों को
छू लेते हैं !
पर, हमने, यह सब,
कुछ भी तो न जाना,
कुछ भी तो न देखा !
जीवन की कश-म-कश में
बीत गया बसन्त !
हमने भी जी लिया बसन्त !
• •
.
(26) उषा-दूतिका
.
उषा का आगमन
रे रात सोये फूल अपनी गंध दो
जिससे किरन आए खिँची
पतली / सुनहली

बावली
फिर रंग अपना दो उसे
निश्छल हृदय का प्यार दो !
अंक भर-भर
मुग्ध
अपना लो !
साकार होगा हर सपन
अनुराग डूबी जब उषा का आगमन !
रे रात सोये फूल
अपनी गंध दो !
हर पाँखुरी के खोल
मुकुलित बंध दो !
• •
.
(27) फागुन में सावन
.
नव उत्साह भरे
हँसिया सान धरे
गेहूँ की सूखी बालें
काट रहा
भूखा-प्यासा
कृषक-कुटुम्ब
बिना विलम्ब !
असमय
चपला-नर्तन
घन-गर्जन
बूँदा-बाँदी,
माटी की सोंधी गंध

महकती !
पर, स्वागत पर प्रतिबन्ध,
प्रकृति मनोरम
पर, वर्षा-देव हुए हैं अंध,
तभी बेमौसम
फागुन में
सावन !

• •

.

(28) स्वर्ण की सौगात

.

स्वर्ण की सौगात लायी भोर !

.

री जगो कलियो ! उठो उपहार आँचल में भरो
सज सुनहरे रूप में, मधु भाव पाटल में भरो
भर नया उन्मेष अंगों में
झूम लो नव-नव उमंगों में
गंधवह शीतल तरंगों में
प्रीति-पुलकित हर लता चितचोर !

.

खोल दो अंतर झरोखे द्वार वातायन सभी
अब नहीं ऐसे अँधेरे में घिरे आनन कभी
स्वर्ण-सागर में नहाओ रे
आभरण से तन सजाओ रे
नव प्रभाती गीत गाओ रे
झमझमा कर नाच ले मन-मोर !

• •

.

(29) भोर का गीत

.

भोर की लाली हृदय में राग चुप-चुप भर गयी !

.

जब गिरी तन पर नवल पहली किरन
हो गया अनजान चंचल मन-हिरन
प्रीत की भोली उमंगों को लिए
लाज की गद-गद तरंगों को लिए

प्रात की शीतल हवा ; आ — अंग सुरभित कर गयी !

.

प्रिय अरुण पा जब कमलिनी खिल गयी
स्वर्ग की सौगात मानों मिल गयी,
झूमती डालें पहन नव आभरण
हर्ष पुलकित किस तरह वातावरण

भर सुनहरा रंग ऊषा कर गयी वसुधा नयी !

• •

.

(30) माँझी

.

साँझ की बेला घिरी, माँझी !

.

अब जलाया दीप होगा रे किसी ने
भर नयन में नीर,
और गाया गीत होगा रे किसी ने
साध कर मंजीर,
मर्म जीवन का भरे अविरल बुलाता
सिन्धु सिकता तीर,
स्वप्न की छाया गिरी, माँझी !
साँझ की बेला घिरी, माँझी !

.

दिग्वधू-सा ही किया होगा

किसी ने कुंकुमी शृंगार,
झिलमिलाया सोम-सा होगा
किसी का रे रुपहला प्यार,
लौटते रंगीन विहगों की दिशा में
मोड़ दो पतवार,
सृष्टि तो माया निरी, माँझी !
साँझ की बेला घिरी, माँझी !

• •

.

(31) उषा रानी

.

नील नभ-सर में मुदित मुग्धा उषा-रानी नहाती है !

.

शशि-बंध में बँध, रात भर आसव पिया
प्रतिदान जिसका प्रीति पावन से दिया
नव अंगरागों से जगत सुरभित किया
सोच हेला-हाव, अरुणिम तार रेशम के बहाती है !

.

नव रंग सरसिज के भरे जिसका वदन
परितोष भावों को किये जैसे वहन
प्रिय कल्पना में मंजु मंगल मन मगन
रे अकारण हर दिशा सीकर उड़ाकर गहगहाती है !

• •

.

(32) सुहानी सुबह

.

जीवन की हर सुबह सुहानी हो !

.

भर लो हास बहारों का
नदियों कूल कछारों का

फूलों गजरों हारों का
कन-कन की हर्षान्त कहानी हो !
जीवन की हर सुबह सुहानी हो !
.
मीठा राग विहंगों का
पागल प्रेम उमंगों का
अंतर लाज-तरंगों का
छलिया दुनिया नहीं बिरानी हो !
जीवन की हर सुबह सुहानी हो !
.
शीतल नेह निगाहों से
भर दो दुनिया चाहों से
प्यार भरे गलबाहों से
लहकी-लहकी मधुर जवानी हो !
जीवन की हर सुबह सुहानी हो !
• •
.
(33) लघु जीवन
.
फूलों का संसार हमारा है !
.
उज्ज्वल हास लुटाते हैं
मधु मकरंद उड़ाते हैं
मारुत पेंग सुहाते हैं
झंकृत उर हर तार हमारा है !
फूलों का संसार हमारा है !
.
ले लो हार बनाने को
भर लो माँग सजाने को

सूना गेह बसाने को
भोला-भोला प्यार हमारा है !
फूलों का संसार हमारा है !
.
हमको देख लजाओ ना
छलना भाव जताओ ना
इतना हाय सताओ ना
दो पल का शृंगार हमारा है !
फूलों का संसार हमारा है !
• •
.
(34) फाग
.
फागुन का महीना है, मचा है फाग
होली छाक छायी है ; सरस रँग-राग !
.
बालों में गुछे दाने, सुनहरे खेत
चारों ओर झर-झर झूमते समवेत !
.
पुरवा प्यार बरसा कर, रही है डोल,
सरसों रूप सरसा कर, खड़ी मुख खोल !
.
रे, हर गाँव बजते डफ-मँजीरे-ढोल
देते साथ मादक नव सुरीले बोल !
.
चाँदी की पहन पायल सखी री नाच,
आया मन पिया चंचल सखी री नाच !
• •
.
(35) वर्षा

(तीन सुभाषित)

.

(1)

अंक भर-भर नव सलेटी बादलों को
स्नेह-पूरित आ गयी बरसात रे !
हर मलिन उर को सहज ही दे गयी मधु
भावनाओं की नयी सौगात रे !

.

(2)

एक-रसता स्वर अनारत भंग कर जब
राग बन रिमझिम बरसती है घटा,
दूर क्षितिजों तक बिखर जाती अनावृत
हो तभी नव-सृष्टि की गोपन छटा !

.

(3)

मन-सरोवर में नयी हलचल लिए, नव
हाव से रह-रह थिरकतीं ऊर्मियाँ,
कौन ने, अव्यक्त मधुरस-धार में यों
प्राण मेरा आज रे नहला दिया !

• •

.

(36) भोर होती है!

.

और अब आँसू बहाओ मत
भोर होती है !

.

दीप सारे बुझ गये
आया प्रभंजन,
सब सहारे ढह गये

बरसा प्रलय-घन,
हार, पंथी ! लड़खड़ाओ मत
भोर होती है !

.

बह रही बेबस उमड़
धारा विपथगा,
घोर अँधियारी घिरी
स्वच्छंद प्रमदा,
आस सूरज की मिटाओ मत
भोर होती है !

• •

.

(37) रात भर

.

रात भर सन्-सन् पवन
फूस की छत और माटी की दिवारों से
शराबी की तरह
करता रहा मदहोश आलिंगन !
रात भर सन्-सन् पवन !

.

डोलती दहशत रही भीतर कुटी के,
चार आँखें
रतजगा करती रहीं भीतर कुटी के,
तम बरसता ही रहा
पर,
घिर न पाया एक पल
आशा भरा भावी उषा-जीवन !
रात भर
गरजा किया सन् सन् पवन !

• •

.

(38) भोर

.

क्या अभी भी रात्रि है कुछ शेष ?

.

स्तब्धता, लगता कि सोया भोर,
देखती आँखें क्षितिज की ओर,
सृष्टि का बदला नहीं क्यों वेष ?
क्या अभी भी रात्रि है कुछ शेष ?

.

दे रही ऊषा नहीं वरदान,
मौन विहगों का अभी तो गान,
उठ पड़े, पर, जाग मेरे प्राण,
सुन रहा जीवन नया संदेश !
क्या अभी भी रात्रि है कुछ शेष ?

.

स्वप्न से मुझको नहीं है मोह,
कर्मरत मानव-हृदय की टोह,
जागता मेरा रहे नव देश !
क्या अभी भी रात्रि है कुछ शेष ?

• •

.

(39) साँझ

.

उस ऊँचे टीले पर
कुछ सहमी-सी
काली, नंगी, अनगढ़ चट्टान पड़ी है !
सहमी-सी —
शायद,

उस पर अब कोई आकर लेटेगा !
कोई ?
हाँ, हो सकता है —
चाँद-सितारों का प्रेमी हो,
कवि हो,
प्रिय से बिछुड़ा हो,
या कि जगत से रूठा हो !
.
टीले के चारों ओर
बड़ी दूर-दूर तक
भूरी मिट्टी पर
हरा-हरा क़ालीन बिछा है ;
क़ालीन नहीं हो तो
कम्बल हो सकता है
जिसके अन्दर
कोई भी छिप सकता है !
.
पास सरोवर के
नरम हृदय की लहरों पर
सूरज की ठंडी किरणें
आलिंगन ढीला करती-सी
धीमे-धीमे
कल आने की बात
सुनाती हैं —
'देखो,
जैसे वह विहग-यूथ उड़ा आता है
हम भी आएंगे !
अब तुम सो जाओ' !

.
फिर झोंका आया मंद हवा का
जैसे कोई रमणी
जॉरजेट की साड़ी पहने
निकली हो अभी निकट से !
और देखते ही
इस मन-मोहक दृश्य-चित्र पर
क्या कहें !
किस फूहड़ चित्रकार ने
काले रंग का ब्रुश
आहिस्ता-आहिस्ता
कितनी बेरहमी से चला दिया !
.
फिर क्या होता है
चाहे कितने ही छींटे
व्योम पर सफ़ेदी के फेंकें !
• •
.
(40) ज्वार और नाविक
.
नाव नाविक खे रहा है !
.
सिंधु-उर को चीर अविरल
दौड़तीं लहरें भयंकर,
सनसनाती हैं हवाएँ
उग्र स्वर से ठीक सर पर,
छा रहा नभ में सघन तम
इस क्षितिज से उस क्षितिज तक
पास हिंसक जंतु कोई

साँस लम्बी ले रहा है !

.

दूर से आ मेघ गहरे
घिर रहे क्षण-क्षण प्रलय के,
घोर गर्जन कर दबाते
स्वर सबल आशा विजय के,
घूरती अवसान-बेला
मृत्यु से अभिसार है, पर
अटल साहस से सतत बढ़
यह चुनौती दे रहा है !

• •

.

(41) शिशिर की रात (1)

.

शिशिर-ऋतु-राज, राका-रश्मियाँ चंचल !

.

कि फैला दिग-दिगन्तों में सघन कुहरा,
सजल कण-कण कि मानों प्यार आ उतरा,
प्रकृति-संगीत-स्वर बस गूँजता अविरल !
शिशिर-ऋतु-राज, राका-रश्मियाँ चंचल !

.

शिथिल तरु-डाल, सम्पुट फूल-पाँखुड़ियाँ,
रहीं चुपचाप गिर ये ओस की लड़ियाँ,
धवल हैं सब दिशाएँ झूमती उज्वल !
शिशिर-ऋतु-राज, राका-रश्मियाँ चंचल !

.

गगन के वक्ष पर कुछ टिमटिमाते हैं
सितारे जो नहीं फूले समाते हैं,
सुखद प्रत्येक उर है नृत्यमय-झलमल !

शिशिर-ऋतु-राज, राका-रश्मियाँ चंचल !

.

धरा आकाश एकाकार आलिंगन,
प्रणय के तार पर यौवन भरा गायन,
फिसलता नीलवर्णी शून्य में आँचल !
शिशिर-ऋतु-राज, राका-रश्मियाँ चंचल !

.

विहग तरु पर अकेला कूक देता है
किसी की याद में बस हूक देता है,
नयन प्रिय-पंथ पर प्रतिपल बिछे निर्मल !
शिशिर-ऋतु-राज, राका-रश्मियाँ चंचल !

.

सबेरा है कहाँ ? संसार सब सोया,
पवन सुनसान में बहता हुआ खोया,
अभी हैं स्वप्न के पल शेष कुछ कोमल !
शिशिर-ऋतु-राज, राका-रश्मियाँ चंचल !

• •

.

(42) शिशिर की रात (2)

.

स्तब्ध, गीली, शुभ्र धुँधली रात है,
बह रहा शीतल शिशिर का वात है !

.

छा रहा कुहरा धुआँ-सा दूर तक,
छिप गया है चन्द्रमा का नूर तक !

.

हो गयी फीकी नशीली ज्योत्स्ना,
व्योम मानों शीत का बंदी बना !

.

घोंसलों से मूक चिड़ियाँ झाँकतीं,
नींद में डूबी हुईं कुछ आँकतीं !

.

शांत धरती पर खड़ी ज्यों भित्तियाँ
जम गयी प्रत्येक तरु की पत्तियाँ !

.

आज चंचल धूल भी चुपचाप है,
उच्च टूटे शृंग पर हिमताप है,

.

बर्फ़ का तूफ़ान आएगा अभी,
श्वेत चादर-सी बिछाएगा अभी !

.

बन्द कर लो ये झरोखे द्वार सब,
आज तो उमड़े हृदय का प्यार सब !

.

रात लम्बी है सबेरा दूर है,
क्या करें, यह मन बड़ा मजबूर है !

.

इस तरह अब और शरमाओ नहीं,
पास आओ, दूर यों जाओ नहीं !

.

रूठने का आज यह अवसर नहीं
ज़िन्दगी इस रात से बेहतर नहीं !

• •

.

(43) बसंत

.

अंग-अंग में उमंग आज तो पिया,
बसंत आ गया !

.

दूर खेत मुसकरा रहे हरे-हरे,

डोलती बयार नव-सुगंध को धरे,
गा रहे विहग नवीन भावना भरे,
प्राण ! आज तो विशुद्ध भाव प्यार का
हृदय समा गया !
अंग-अंग में उमंग आज तो पिया,
बसंत आ गया !

.

खिल गया अनेक फूल-पात से चमन ;
झूम-झूम मौन गीत गा रहा गगन,
यह लजा रही उषा कि पर्व है मिलन,
आ गया समय बहार का, विहार का
नया नया नया !
अंग-अंग में उमंग आज तो पिया,
बसंत आ गया !

• •

.

(44) आ गया सावन

.

प्रीति के प्रिय गीत गाओ !

.

आ गया सावन सजीवन,
हैं बरसते प्यार के घन !
दूर खेतों में सरस सुन्दर
मुसकराती तृप्त हरियाली,
डाल पर कलियाँ हँसी चंचल
छलछलाकर रस भरी प्याली,

.

तुम न जाओ दूर मुझसे
प्राण में आकर समाओ !

प्रीति के प्रिय गीत गाओ !

.

वायु शीतल बह रही है,
कान में कुछ कह रही है !
स्वर मिलन-संगीत खग-उपवन,
भू-हृदय में हो रही धड़कन,
सब खिँचे जाते जगत के कण,
मूक मनहर सृष्टि-आकर्षण,

.

भावना ले द्रोह की तुम
यों विमुख होकर न जाओ !
प्रीति के प्रिय गीत गाओ !

• •

.

(45) बरखा की रात

.

दिशाएँ खो गयीं तम में
धरा का व्योम से चुपचाप आलिंगन !

.

धरा ऐसी कि जिसने नव
सितारों से जड़ित साड़ी उतारी है,
सिहर कर गौर-वर्णी स्वस्थ
बाहें गोद में आने पसारी हैं,

.

समायी जा रही बनकर
सुहागिन, मुग्ध मन है और बेसुध तन !
दिशाएँ खो गयीं तम में
धरा का व्योम से चुपचाप आलिंगन !

.

कि लहरों के उठे शीतल

उरोजों पर अजाना मन मचलता है
चतुर्दिक घुल रहा उन्माद
छवि पर छा रही निश्छल सरलता है
.
खिँचे जाते हृदय के तार
अगणित स्वर्ग-सम अविराम आकर्षण !
दिशाएँ खो गयीं तम में
धरा का व्योम से चुपचाप आलिंगन !
.
बुझाने छटपटाती प्यास
युग-युग की, हुआ अनमोल यह संगम,
जलद नभ से विरह-ज्वाला
बुझाने को सघन होकर झरे झमझम,
.
निरन्तर बह रहा है स्रोत
जीवन का, उमड़ता आज है यौवन !
दिशाएँ खो गयीं तम में
धरा का व्योम से चुपचाप आलिंगन !
• •
.
(46) मेघ और शशि
.
नभ में मेघों के टुकड़ों से
खेल रहा शशि आँख-मिचैनी !
.
शशि — सुन्दर, मोहक-आकर्षक
गोरे-गोरे अंगों वाला,
इतना तन्मय जाने क्यों, जब
मेघ-असुन्दर काला-काला ?
.

है क्या कोई जो बतलाए —
कैसे आज हुई अनहोनी !
नभ में मेघों के टुकड़ों से
खेल रहा शशि आँख-मिचैनी !

.

दौड़ रहे हैं दोनों अविरल,
पर ज्यों ही बादल हँसता है,
तब उन्मादी-सा शशि घन की
युग बाहों में जा फँसता है,

.

कैसे कह सकता है कोई
किसको अपनी बाज़ी खोनी !
नभ में मेघों के टुकड़ों से
खेल रहा शशि आँख-मिचैनी !

.

दोनों ने भग कर चरणों से
लगभग नभ को नाप लिया है,
थोड़ा-थोड़ा दोनों ने ही
आज लिया है और दिया है,

.

रे रहे अजर शशि-घन की यह
युग-युग जोड़ी लोनी-लोनी !
नभ में मेघों के टुकड़ों से
खेल रहा शशि आँख-मिचैनी !

• •

.

(47) ज्योत्स्ना

.

मेरे पास यह आती हुई इतरा रही है ज्योत्स्ना,

मुझको देख एकाकी, सतत भरमा रही है ज्योत्स्ना !
.
धीरे से मुँडेरों पर उतरती आ रही है ज्योत्स्ना,
प्यारा और मीठा गीत, रानी गा रही है ज्योत्स्ना !
.
मेरे टीन पर, छत पर बिखर कर फैलती है ज्योत्स्ना,
मेरे हाथ से, मुख से निडर बन खेलती है ज्योत्स्ना !
.
सोने भी नहीं देती, स्वयं भी जागती है ज्योत्स्ना,
होती जब सुबह, जाने कहाँ जा भागती है ज्योत्स्ना !
.
मेरे से न जाने क्यों नहीं यह बोलती है ज्योत्स्ना,
प्राणों में अनोखा प्यार-अमृत घोलती है ज्योत्स्ना !
• •
.
(48) पूनम
.
पीपल के पीछे से चुपचुप
झाँक रहा चंदा पूनम का !
.
इतना भोला है कि उसे यह
ज्ञात न, कोई देख रहा है,
चारों ओर नयी आभा से
पूरित शीतल सिंधु बहा है,
दूर क्षितिज पर शंकाकुल मुख
गोरा-गोरा शशि का दमका !
पीपल के पीछे से चुपचुप
झाँक रहा चंदा पूनम का !
.
इतना व्याकुल है कि अभी से

खोल द्वार नभ के, भरमाया,
काली रात न होने भी दी
सबके सम्मुख बाहर आया,
और न जाने रोक रहा क्यों
गिरने वाला परदा तम का !
पीपल के पीछे से चुपचुप
झाँक रहा चंदा पूनम का !

• •

.

(49) झलकता रूप

.

शशि पर घूँघट बादल का है !

.

घूँघट इतना झीना जिसमें
है शरमाया मुख प्रतिबिम्बित,
दो पागल कजरारी अँखियाँ
संधान किये नभ पर अंकित,
सीमित रह न सका किंचित भी
उभर-उभर मधु-घट छलका है !
शशि पर घूँघट बादल का है !

.

इतना छलका कि सितारों-से
छींटे उड़-उड़ कर फैल गये,
मानों उर से बाहर होकर
बिखरे हों अगणित भाव नये,
या स्वर्ण-अलंकृत छोर गगन
में फहराते आँचल का है !
शशि पर घूँघट बादल का है !

• •

.

(50) समर्पण

.

ओ राकापति ! देख तुम्हें सब
रूप-गर्विताएँ लज्जित हैं !

.

सौन्दर्य सभी का फीका-सा
लगता है, जब तुम आते हो,
अपनी शीतल नव चाँदी-सी
आभा ले नभ में छाते हो,
जाने कितना स्वर्गिक-वैभव
अंगों में, उर में संचित है !
और राकापति ! देख तुम्हें सब
रूप-गर्विताएँ लज्जित हैं !

.

केवल मुसकान-किरन पर ही
जग का सब वैभव न्यौछावर,
बलिहारी जाता है कवि का
तन-मन, ओ नभवासी सुंदर !
देख तुम्हें जग के कन-कन का
अंतर-आनंद असीमित है !
ओ राकापति ! देख तुम्हें सब
रूप-गर्विताएँ लज्जित हैं !

• •

.

(51) बड़ा कठिन

.

हिमकर से आँख चुराना बड़ा कठिन !

.

यह जब अपनी नव-आभा को

सूने नभ में फैलाता है,
तब भावुक अंतर का सागर
सुख-लहरों से भर जाता है,
पर, पल भर भी
हिमकर को पास बुलाना बड़ा कठिन !
हिमकर से आँख चुराना बड़ा कठिन !

.

चंचल अँखियाँ जब निंदिया के
पलने पर चढ़ सो जाती हैं,
जब क्षण भर में तन-मन की धन-
राशि परायी हो जाती है,
तब भी, सचमुच
हिमकर की याद भुलाना बड़ा कठिन !
हिमकर से आँख चुराना बड़ा कठिन !

.

• •

(52) कलानिधि

.

रे मूक कलानिधि के मुख पर
मोहक सपनों की छाया है !

.

दिन में सोता है
निशि भर जगता है,
जिससे अलसाया खोया-खोया-सा
हरदम लगता है,
पहचान नहीं पाओगे तुम
कुछ अद्भुत स्वर्गिक माया है !
रे मूक कलानिधि के मुख पर
मोहक सपनों की छाया है !

.
पहले बढ़ता, पर
फिर घट जाता है,
जिससे पल भर भी यह नहीं किसी के
वश में आता है,
समझें क्या ? यह अस्सी घाटों
का पानी पीकर आया है !
रे मूक कलानिधि के मुख पर
मोहक सपनों की छाया है !
.
• •
(53) अमावस की अँधेरी में
.
नभ के किन परदों के पीछे आज छिपा है चाँद?
.
मैं पूछ रहा हूँ तुमसे ओ
नीरव जलने वाले तारो !
मैं पूछ रहा हूँ तुमसे ओ
अविरल बहने वाली धारो !
.
सागर की किस गहराई में आज छिपा है चाँद?
नभ के किन परदों के पीछे आज छिपा है चाँद ?
.
मैं पूछ रहा हूँ तुमसे ओ
मन्थर मुक्त हवा के झोंको !
जिसने चाँद चुराया मेरा
उसको सत्वर भगकर रोको !
.
नयनों से दूर बहुत जाकर आज छिपा है चाँद?
नभ के किन परदों के पीछे आज छिपा है चाँद ?

.

मैं पूछ रहा हूँ तुमसे ओ
तरुओ ! पहरेदार हज़ारों,
चुपचाप खड़े हो क्यों ? अपने
पूरे स्वर से नाम पुकारो !

.

दूर कहीं मेरी दुनिया से आज छिपा है चाँद !
नभ के किन परदों के पीछे आज छिपा है चाँद?

.

• •

(54) ओ चाँद !

.

ओ चाँद सलोने ! अम्बर से
क्या कभी न नीचे उतरोगे ?

.

बंद करो उन्मत्त ! चकोरी
का और चुराना भोला मन,
दूर करो नभ के जादूगर !
मचली लहरों का पागलपन,
शांत करो जिज्ञासा कवि के
उर में बढ़ने वाली प्रतिक्षण,
ओ चाँद अनोखे ! जीवन का
चुप-चुप कब भेद बताओगे ?
ओ चाँद सलोने ! अम्बर से
क्या कभी न नीचे उतरोगे ?

.

शायद न मिटेगी युग-युग तक
यह दिन-दिन बढ़ती सुन्दरता,
शायद न मिटेगी युग-युग तक

यह निज चरणों की निर्भरता,
शायद न मिटेगी युग-युग तक
यौवन की अल्हड़ चंचलता,
ओ चाँद अकेले ! बाहों में
क्या कभी मुझे भी भर लोगे ?
ओ चाँद सलोने ! अम्बर से
क्या कभी न नीचे उतरोगे

.
• •

(55) मेघ-गीत

.

उमड़ते-गरजते चले आ रहे घन
घिरा व्योम सारा कि बहता प्रभंजन
अँधेरी उभरती अवनि पर निशा-सी
घटाएँ सुहानी उड़ीं दे निमन्त्रण !

.

कि बरसो जलद रे जलन पर निरंतर
तपी और झुलसी विजन-भूमि दिन भर,
करो शान्त प्रत्येक कण आज शीतल
हरी हो, भरी हो प्रकृति नव्य सुन्दर !

.

झड़ी पर, झड़ी पर, झड़ी पर, झड़ी हो,
जगत मंच पर सौम्य शोभा खड़ी हो,
गगन से झरो मेघ ओ! आज रिमझिम,
बरस लो सतत, मोतियों-सी लड़ी हो !

.

हवा के झकोरे उड़ा गंध-पानी
मिटा दी सभी उष्णता की निशानी,
नहाती दिवारें नयी औ' पुरानी

डगर में कहीं स्रोत चंचल रवानी !

.

कृषक ने पसीने बहाये नहीं थे,
नवल बीज भू पर उगाये नहीं थे,
सृजन-पंथ पर हल न आये अभी थे
खिले औ' पके फल न खाये कहीं थे !

.

दृगों को उठा कर, गगन में अड़ा कर
प्रतीक्षा तुम्हारी सतत लौ लगा कर—
हृदय से, श्रवण से, नयन से व तन से,
घिरो घन, उड़ो घन घुमड़कर जगत पर !

.

अजब हो छटा बिजलियाँ चमचमाएँ,
अँधेरा सघन, लुप्त हो सब दिशाएँ
भरन पर, भरन पर सुना राग नूतन
नया प्रेम का मुक्त-संदेश छाये !

.

विजन शुष्क आँचल हरा हो, हरा हो,
जवानी भरी हो सुहागिन धरा हो,
चपलता बिछलती, सरलता शरमती,
नयन स्नेहमय ज्योति, जीवन भरा हो !

.

• •

(56) बरगद

.

स्तब्धता सुनसान
पथ वीरान,
सीमाहीन नीला व्योम !
मटमैली धरा पर

वृक्ष बरगद का झुका
मानों कि है प्राचीनता साक्षात् !
.
निर्बल
वृद्ध-सा जर्जर शिथिल,
उखड़ी हुई साँसें,
जड़ें भू पर बिछी हैं
और गिरने के मरण-क्षण पर
भयंकर स्वप्न ने
कंपित किया झकझोर कर
भय की बना मुद्रा
खड़ा यों कर दिया !
.
उड़कर धूल कहना चाहती है —
'ओ गगनचुम्बी !
गिरो
पूरी न आकांक्षा हुई,
आकर मिलो मुझसे
विवश होकर धराशायी !
न जाना मूल्य लघुता का
किया उपहास !'
.
जड़ के पास
खंडित औ' कुरूपा
जो रँगा सिन्दूर से
हनुमान-सा पाषाण
टिक कर गोद में बैठा
कि जिसकी अर्चना करते

मनुज कितने
नमन हो परिक्रमा करते —
.
व आधी रात को आ
श्वान जिसको चाटते !
.
• •
(57) रात का आलम
.
ठंडी हो रही है रात !
धीमी
यंत्रा की आवाज़
रह-रह गूँजती अज्ञात !
.
स्तब्धता को चीर देती है
कभी सीटी कहीं से दूर इंजन की,
कहीं मच्छर तड़प भन-भन
अनोखा शोर करते हैं,
कभी चूहे निकल कर
दौड़ने की होड़ करते हैं,
घड़ी घंटे बजाती है।
कि बाक़ी रुक गये सब काम,
स्थिर, गतिहीन, जड़, निस्पन्द
खोकर चेतना बेहोश
साँसें ले रही हैं जान
हो अनजान !
.
ऊँघते
मज़दूर, पहरेदार, श्रमजीवी

नशे में नींद के ऐसेμ
कि मानों संगिनी रह-रह बुलाती
कर सतत संकेत
होने बाँह में आबद्ध
मन से, देह से
चुपचाप एकाकार लय होने
शिथिल !
स्वप्न से फिर जाग
अपने पर हँसी
आ खेल जाती है !
कि ऐसी भूल भी कैसी
सदा जो भूल जाती है !
.
न सीमा है कहीं
बेजोड़ है सारी अनोखी बात,
पर, है सत्य
ठंडी हो रही है रात,
भारी हो रहा अविराम
धुल कर चाँदनी से वात,
ऊपर बन रही है ओस
धुँधली पड़ रही है रात !
.
यह री कल खुलेगा
रेशमी पट
मुग्ध प्रकृति-वधू का गात !
.
• •
(58) सुनहरी आभा
.

छिपा चाँद काले उमड़ते घनों में,
उठी प्रबल झंझा लहरते बनों में !
गरजता गगन है,
हहरता पवन है !
.
कि कितनी भयानक
अँधेरी-घनेरी अकेली निशा है,
कि कितनी भयानक
हमारे विजन-पंथ की हर दिशा है !
हमें पर उसे भी सरलतम समझकर,
बितानी सबल बन व हँस कर निरन्तर !
.
नहीं है समय स्वप्न को हम निहारें,
नहीं है समय रूप को हम सँवारें,
नहीं है समय जो कहीं पर रुकें हम,
नहीं है समय साँस ही ले सकें हम,
निरन्तर प्रगति ध्येय होगा हमारा
पहुँचना जहाँ श्रेय होगा हमारा
सबेरा तभी प्रेय होगा हमारा !
.
उषा की चमकती हुईं
लाल किरणें मिलेंगी,
नयी ज्योति ऐसी
कि हिल-हिल
सरल नेह कलियाँ खिलेंगी,
व जीवन हमारा
बदलता चलेगा,
समुन्दर हृदय का

लहरता चलेगा !
कि आभा सुनहरी
नयी सृष्टि सारी,
हमें फिर प्रकृति
नव दमकती दिखेगी,
सुखद भाव सुंदर
चमकती दिखेगी !
.
• •

(59) प्रभात

.
रंगीन गगन
ऊँचे पर्वत
घाटी मैदान
कि फैला है सुनसान !
हरे-हरे अगणित पेड़
कतारों में खड़े सघन
हिलते पल्लव
प्रतिक्षण-प्रतिपल
बहता शीतल मंद पवन
रंगीन गगन !
.
मेरा तन
बिस्तर पर लोट लगाता है,
आँखें मीचे
नींद परी को
दूर कहीं से
मौन बुलाता है !

मुन्नी जाग गयी है
कहती जो —
'सुबह हुई
ओ बाबूजी, उठो-उठो !'
.
• •
(60) ज्वार भर आया
.
नदी में ज्वार भर आया !
प्रलय हिल्लोल ऊँची
व्योम का मुख चूमने प्रतिपल
उठी बढ़ कर,
किनारे टूटते जाते
शिलाएँ बह रही हैं साथ,
भू को काटती गहरी बनातीं
तीव्र गति से दौड़ती जातीं
अमित लहरें
नहीं हो शांत
आकर एक के उपरांत !
भर-भर बह रही सरिता
कि मानों लिख रहा कवि
वेग से कविता !
बुलाता क्रांति की घड़ियाँ,
भयंकर नाश का सामान
जन-विद्रोह
भीषण आग,
भावावेश-गति ले
ज्वार भर आया !

नदी में ज्वार भर आया !

.

• •

(61) धूल-श्री

.

सौंफिया हरी-हरी

डाल-डाल आज री भरी !

.

हज़ार लाख बेशुमार

हिल रहीं कतार पर कतार,

पा पवन दुलार-प्यार

सन-सनन उठी पुकार,

भर नया उभार

री उतर रही सरल युवा परी !

सौंफिया हरी-हरी

डाल-डाल आज री भरी !

.

मंद रंग लाल-लाल

व्योम की विशाल गाल पर गुलाल,

आज रस भरी डँगाल

है किये सिँगार,

देखभाल कर सँवार पत्र-जाल

री सुहावनी हरीत चूनरी !

सौंफिया हरी-हरी

डाल-डाल आज री भरी !

.

• •

(62) पतझर और बंसत

.

उड़ रही है धूल !

उड़ रही है, धूल !

.

डालियों में आज
खिल रहे हैं फूल !
खिल रहे हैं फूल !

.

झर रहे हैं पात,
भर रहे हैं पात,
आज दोनों बात !

.

आ रहा ऋतुराज
सृष्टि का करता हुआ
फिर से नया ही साज !

.

पिघला बर्फ़
नदियों के बढ़े हैं कूल !
उड़ रही है धूल !

.

• •

(63) प्रभात की चाह

.

बोले जीवन के मधुबन में
कोयल का स्वर, कोयल का स्वर !

.

लद जाएँ कुसुमों से डाली,
अम्बर में फूट पड़े लाली,
बह चले सुरभिमय मंद पवन,
छा जाए जग में हरियाली,
गा दे गीत खगों की टोली
नीरव जीवन-सरिता तट पर !

बोले जीवन के मधुबन में
कोयल का स्वर, कोयल का स्वर !

.

रजनी मौन भरे जीवन से,
भ्रमरों के गुनगुन गुंजन से,
जग कोलाहलमय हो जाए,
छूट पड़े जीवन बंधन से,
डोल उठे संसृति का अणु-अणु
प्राणों में शक्ति नयी पाकर !
बोले जीवन के मधुबन में
कोयल का स्वर, कोयल का स्वर !

.

जागे सोया मानव-जीवन,
बदले जग का जीवन-दर्शन,
निर्धनता, व्यथा मिटे सारी,
हो नवल विश्व, नूतन जन-मन,
मिट जाए सपनों की दुनिया,
लहराए जागृति का सागर !
बोले जीवन के मधुबन में
कोयल का स्वर, कोयल का स्वर !

.

• •

(64) प्रभात

.

विहग सुनसान में, तरु पर, प्रभाती-गान जीवन का
सुखद, उन्मुक्त स्वर से, एक लय में गा रहा है क्यों ?

.

सितारे छिप गये सारे, अँधेरा मिट गया सत्वर,
उषा-साम्राज्य का अनुचर दिखाई दे रहा दिनकर,

गगन में मौन एकाकी, गयी है ज्योति पड़ फीकी
विहग सुनसान में, तरु पर, प्रभाती-गान जीवन का
सुखद, उन्मुक्त स्वर से, एक लय में गा रहा है क्यों ?
.
अलस तंद्रा भरी चुपचाप थी दुनिया अभी सोयी,
मनुज सब स्वप्न में डूबे सचाई रूप की खोयी,
जगा जन-जन, जगा हर मन, मुखर वातावरण प्रतिपल
नया संदेश, जीवन जागरण-क्षण पा रहा है क्यों ?
विहग सुनसान में, तरु पर, प्रभाती-गान जीवन का
सुखद, उन्मुक्त स्वर से, एक लय में गा रहा है क्यों ?
.
• •
(65) री हवा !

री हवा !
गीत गाती आ,
सनसनाती आ ;
डालियाँ झकझोरती
रज को उड़ाती आ !
मोहक गंध से भर
प्राण पुरवैया
दूर उस पर्वत-शिखा से
कूदती आ जा !
.
ओ हवा !
उन्मादिनी यौवन भरी
नूतन हरी इन पत्तियों को
चूमती आ जा !
.

गुनगुनाती आ,
मेघ के टुकड़े लुटाती आ !

.

मत्त बेसुध मन
मत्त बेसुध तन

.

खिलखिलाती, रसमयी,
जीवनमयी
उर-तार झंकृत
नृत्य करती आ !
री हवा !

.

• •

(66) रात

.

चाँदनी छिटकी हुई बेछोर,
नाचता है उल्लसित मन-मोर,
नींद आँखों से उलझकर हो गयी है दूर !

.

प्राण ने सुखमय नया संसार,
आज पलकों में किया साकार,
मूक नयनों का तभी यह बढ़ गया है नूर !

.

है बड़ी मोहक रुपहली रात,
दूर पूरब से बहा है वात,
व्योम में छाया हुआ निशि का नशा भरपूर !

.

प्राणमय कितना निशा का गान,
सुन जिसे रहता नहीं है ध्यान,
है छिपा कोई कहीं पर सृष्टि-भेद ज़रूर !

.

•   •

(67) ढलती रात

.

स्वर्ग का ऐश्वर्य
धरती पर सहज बिखरा हुआ,
आकाश-पथ की चाँदनी की धूल से
        निखरा हुआ !

.

जगमगाती रात
ठहरे पात,
निर्जन में अकेली मूक
जीवन की पहेली-सी
रुकी-सी रात !

.

अंतर-तृप्ति की छाया
बनी प्रतिमा सलज्जा, मुग्ध सोयी रात
मानों सब गयी अपना कहीं पर हार !
धुँधली-सी गयीं बन गूढ़ रेखाएँ
बतातीं हो गयी हैं पूर्ण इच्छाएँ,
अरी ! शीतल सकुचती रात !
मत कर साधना ऐसी—
न हो नव भोर,
सपनों की न टूटे
रजत-राका-रश्मियों की डोर !
री पगली ! वही तो दे सकेगा
शक्ति, प्राणों में नया उत्साह, गति, कंपन !
मचा यों शोर—
हो नव भोर !

.

• •

(68) मेघों से

.

दौड़ते आकाश-पथ से
जा रहे किस देश को घन ?

.

देख जिनको कर रही सज्जा प्रकृति-बाला,
देख जिनको आज छलकी पड़ रही हाला,
जो लगाए आश, उनको
छोड़कर क्यों जा रहे घन ?
दौड़ते आकाश-पथ से
जा रहे किस देश को घन ?

.

हर तृषित की प्यास को तुमको बुझाना है,
हर भ्रमित को राह भी तुमको सुझाना है,
पर, बिना बरसे अरे तुम
जा रहे किस देश का घन ?
दौड़ते आकाश-पथ से
जा रहे किसी देश को घन ?

.

यों तुम्हारा देर से आना नहीं अच्छा,
फिर गरज कर, क्रोध में जाना नहीं अच्छा,
एक पल रुक कर बताओ
जा रहे किस देश को घन ?
दौड़ते आकाश-पथ से
जा रहे किस देश को घन ?

.

• •

(69) घटाएँ

.
छा गये सारे गगन पर
नव घने घन मिल मनोहर,
दे रहे हैं त्रस्त भू को
आज तो शत-शत दुआएँ !
देख लो, कितनी अँधेरी हैं घटाएँ !
.
कर रहा है व्योम गर्जन
मंद्र ध्वनि से, वाद्य-सा बन,
चाहता देना सुना जो आज सारी स्वर-कलाएँ !
देख लो, ये व्योम-चेरी हैं घटाएँ !
.
अरुक बरसो बिन्दु जल के
तीव्र गति से, ना कि हलके,
विश्व भर में वृष्टि कर दो दूर हों सारी बलाएँ !
देख लो, कितनी घनेरी हैं घटाएँ !
.
• •
(70) जल-वृष्टि
.
पानी बरसा, पानी बरसा !
.
देख रहे थे आसमान को
जब प्यासी आँखों से जन-जन,
सिर पर ज्वाला का बोझ लिए
जब साँसें भरते थे तरु-गण,
शांत हुए, जैसे ही टप-टप
पानी बरसा, पानी बरसा !
.
लरज-लरज कर बिजली चमकी

घुमड़-घुमड़ कर गरजे नव-घन,
भीग गया रे दूर क्षितिज तक
नंगी शुष्क धरा का कण-कण
जगती को नव-जीवन देने
पानी बरसा, पानी बरसा !

.

इस जल में नूतन जग की
रचना का सफल प्रयास छिपा;
इस जल में त्रास्त मनुजता का
सुन्दर निश्छल मधु-हास छिपा,
नवयुग का नव-संदेश लिए
पानी बरसा, पानी

.

• •

(71) प्रात

.

पवन के साथ भर कर डग
करो पूरा असीमित मग
दिखो वरदान-से दीपित
दिशाएँ हो सकल ज्योतित,
सबेरा आ, सबेरा आ !

.

बसेरा अब नहीं तेरा
उठा अपना सभी डेरा,
किरण-भय से बिना स्वर कर
अभी उलटे चरण धर कर
अँधेरा जा, अँधेरा जा !

.

• •

(72) संध्या

.

नीला-नीला व्योम कि जिसमें छाये कुछ काले-काले घन,
संध्या की बेला है जगती का सूना-सूना-सा आँगन !

.

चरती भैंसें मैदानों में, कुछ मेड़ों-खेतों के ऊपर,
धीरे-धीरे बजता है गति के क्रम से घंटी का मधु-स्वर !

.

आँख-मिचैनी खेल रहे हैं मेघ निकट जा-जा सूरज के,
उड़ता लंबी पाँति बनाकर बगलों का दल-बल सजधज के!

.

कवि ऊँचे टीले पर बैठा दिन का ढलना देख रहा है
प्रकृति-वधू का चुप-चुप तन से वस्त्रा बदलना देख रहा है!

.

• •

(73) बरसात

.

सांध्य का वातावरण धूमिल गहन तम में
छिप गया दिन भी शिशिर-सा शुष्क-मौसम में !

.

तप्त धरती पर उमड़कर छा रहे बादल
बह रहीं मोहक बयारें सिंधु से शीतल !

.

ताप में अब डूबती घड़ियाँ बिताओ मत
त्रास्त हो आकाश में आँखें लगाओ मत,

.

दूर दक्खिन से नयी बरसात आयी है
यह तभी बिजली गगन में चमचमायी है !

.

• •

(74) तारक

.
झिलमिल-झिलमिल होते तारक !
टिम-टिम कर जलते थिरक-थिरक !
.
कुछ आपस में, कुछ पृथक-पृथक,
बिन मंद हुए, हँस-हँस, अपलक,
.
कुछ टूटे — पर, उत्सर्गजनक
नश्वर और अनश्वर दीपक।
.
बिन लुप्त हुए नव-ऊषा तक
रजनी के सहचर, चिर-सेवक !
.
देखा करते जिसको इकटक,
छिपते दिखलाकर तीव्र चमक !
.
जग को दे जाते चरणोदक
इठला-इठला, क्षण छलक-छलक !
.
झिलमिल-झिलमिल होते तारक !
.
• •
(75) जलते रहो
.
जलते रहो, जलते रहो !
.
चाहे पवन धीरे चले,
चाहे पवन जल्दी चले,
आँधी चले, झंझा मिले,
तूफ़ान के धक्के मिलें,
तिल भर जगह से बिन हिले

जलते रहो, जलते रहो !

.

या शीत हो, कुहरा पड़े,
गरमी पड़े, लूएँ चलें,
बरसात की बौछार हो,
ओले, बरफ़ ढक लें तुम्हें,
आकाश से पर बिन मिटे
जलते रहो, जलते रहो !

.

चाहे प्रलय के राग में
जीवन-मरण का गान हो,
दुनिया हिले, धरती फटे
सागर प्रबलतम साँस ले,
पिघले बिना सब देखकर
जलते रहो, जलते रहो !

.

• •

(76) तारों से

.

तारक नभ में क्यों काँप रहे ?

.

क्या इनके बंदी आज चरण ?
अवरुद्ध बनी घुटती साँसें इन पर भी होता शस्त्र-दमन ?
क्या ये भी शोषण-ज्वाला से,
झुलसाये जाते हैं प्रतिपल ?
दिखते पीड़ित, व्याकुल, दुर्बल,
कुछ केवल कँपकर रह जाते,
कुछ नभ की सीमा नाप रहे !
तारक नभ में क्यों काँप रहे ?

.
क्या दुनिया वाले दोषी हैं ?
सुख-दुख मय जीवन-सपनों में जब जग सोया, बेहोशी है,
रजनी की छाया में जगती
सिर से चरणों तक डूब रही,
एकांत मौन से ऊब रही,
जब कण-कण है म्लान, दुखी; तब
ये किसको दे अभिशाप रहे ?
तारक नभ में क्यों काँप रहे ?
.
क्या कंपन ही इनका जीवन ?
युग-युग से दीख रहे सुखमय, शाश्वत है क्या इनका यौवन ?
गिर-गिर या छुप-छुप कर अविरल
क्या आँखमिचैनी खेल रहे ?
स्नेह-सुधा की बो बेल रहे !
अपनी दुनिया में आपस में
हँस-हँस हिल अपने आप रहे !
तारक नभ में क्यों काँप रहे ?
.
• •
(77) तिमिर-सहचर तारक
.
ये घोर तिमिर के चिर-सहचर !
.
खिलता जब उज्ज्वल नव-प्रभात,
मिट जाती है जब मलिन रात,
ये भी अपना डेरा लेकर चल देते मौन कहीं सत्वर !
ये घोर-तिमिर के चिर-सहचर !
.

मादक संध्या को देख निकट
जब चंद्र निकलता अमर अमिट,
ये भी आ जाते लुक-छिप कर जो लुप्त रहे नभ में दिन भर!
ये घोर तिमिर के चिर-सहचर !

.

होता जिस दिन सघन अँधेरा
अगणित तारों ने नभ घेरा,
ये चाहा करते राका के मिटने का बुझने का अवसर !
ये घोर-तिमिर के चिर-सहचर !

.

ज्योति-अँधेरे का स्नेह-मिलन,
बतलाता सुख-दुखमय जीवन,
उत्थान-पतन औ' अश्रु-हास से मिल बनता जीवन सुखकर!
ये घोर-तिमिर के चिर-सहचर !

.

• •

(78) दीपावली और नक्षत्र-तारक

.

दीप अगणित जल रहे !
अट्टालिकाएँ और कुटियाँ जगमगाती हैं
सघन तम में अमा के !
कर रही नर्तन शिखाएँ ज्योति की
हिल-हिल, निकट मिल !
और थिर हैं बल्ब
नीले, लाल, पीले औ' विविध
रंगीन जगती आज लगती !

.

हो रही है होड़ नभ से;

ध्यान सारा छोड़ कर
मन सब दिशाओं की तरफ़ से मोड़ कर,
इस विश्व के भूखंड भारत ओर
ये सब ताकते हैं झुक गगन से,
मौन विस्मय !
दूर से भग - देख कर मग,
मुग्ध हो-हो
साम्य के आश्चर्य से भर
ग्रह, असंख्यक श्वेत तारक !
हो गयी है मंद जिनकी ज्योति सम्मुख,
हो गया लघुकाय मुख !
निर्जीव धड़कन; लुप्त कम्पन !
.
• •
(79) तारे और नभ
.
तुम पर नभ ने अभिमान किया !
.
नव-मोती-सी छवि को लख कर
अपने उर का शृंगार किया,
फूलों-सा कोमल पाकर ही
अपने प्राणों का हार किया,
कुल-दीप समझ निज स्नेह ढाल
तुमको प्रतिपल द्युतिमान किया !
तुम पर नभ ने अभिमान किया !
.
सुषमा, सुन्दरता, पावनता
की तुमको लघुमूर्ति समझकर,
निर्मलता, कोमलता का उर

में अनुमान लगाकर दृढ़तर,
एकाकी हृत भाग्य दशा पर
जिसने सुख का मधु गान किया !
तुम पर नभ ने अभिमान किया !

.

• •

(80) संध्या के पहले तारे से

.

शून्य नभ में है चमकता आज क्यों बस एक तारा ?

.

जब कि क्षण-क्षण पर प्रगति कर रात आती जा रही है,
चंद्र की हँसती कला भी ज्योति क्रमशः पा रही है,
हो गया है जब तिमिरमय विश्व का कण-कण हमारा !
शून्य नभ में है चमकता आज क्यों बस एक तारा ?

.

बादलों की भी न चादर छा रही विस्तृत निलय में,
और टुकड़े मेघ के भी, हैं नहीं जिसके हृदय में,
है नहीं कोई परिधि भी, स्वच्छ है आकाश सारा !
शून्य नभ में है चमकता आज क्यों बस एक तारा ?

.

जब कि है गोधूलि के पश्चात का सुन्दर समय यह,
हो गये क्यों डूबती रवि-ज्योति में विक्षिप्त लय यह ?
बन गयी जो मुक्त नभ के तारकों को सुदृढ़ कारा !
शून्य नभ में है चमकता आज क्यों बस एक तारा ?

.

• •

(81) अमर सितारे

.

टिमटिमाते हैं सितारे !
दीप नभ के जल रहे हैं

स्नेह बिन, बत्ती बिना ही !
मौन युग-युग से
अचंचल शान्त एकाकी !
लिए लघु ज्योति अपनी एक-सी,
निर्जन गगन के मध्य में।
.
ढल गये हैं युग करोड़ों
सामने सदियाँ अनेकों
बीतती जातीं लिए बस
ध्वंस का इतिहास निर्मम,
पर अचल ये
हैं पृथक ये
विश्व के बनते-बिगड़ते,
क्षणिक उठते और गिरते,
क्षणिक बसते और मिटते
अमिट क्रम से
मुक्त वंचित !
.
कर न पायी शक्ति कोई
अन्त जीवन-नाश इनका।
ये रहे जलते सदा ही
मौन टिमटिम !
मुक्त टिमटिम !
.
• •
(82) उल्कापात
.
जब गिरता है भू पर तारा !
.

आँधी आती है मीलों तक अपना भीषणतम रूप किये
सर-सर-सी पागल-सी गति में नाश मरण का कटु गान लिये,
यह चिन्ह जता कर गिरता है
तीव्र चमक लेकर गिरता है,
यह आहट देकर गिरता है,
यह गिरने से पहले ही दे देता है भगने का नारा !
जब गिरता है भू पर तारा !

.

हो जाते पल में नष्ट सभी भू तरु, तृण, घर जिस क्षण गिरता,
ध्वंस, मरण हाहाकारों का स्वर, आ विप्लव बादल घिरता,
दृश्य - प्रलय से भीषणतर कर,
स्वर - जैसा विस्फोट भयंकर,
गति - विद्युत-सी ले मुक्त प्रखर,
सब मिट जाता बेबस उस क्षण जग का उपवन प्यारा-प्यारा !
जब गिरता है भू पर तारा !

.

• •

(83) ज्योति-केन्द्र

.

ज्योति के ये केन्द्र हैं क्या ?

.

ये नवल रवि-रश्मि जैसे, चाँदनी-से शुद्ध उज्ज्वल,
मोतियों से जगमगाते, हैं विमल मधु मुक्त चंचल !
श्वेत मुक्ता-सी चमक, पर, कर न पाये नभ प्रकाशित,
ज्योति है निज, कर न पाये पूर्ण वसुधा किन्तु ज्योतित !
कौन कहता, दीप ये जो ज्योति से कुटिया सजाते ?
ये निरे अंगार हैं बस जो निकट ही जगमगाते !
ये न दे आलोक पाये बस चमक केवल दिखाते
झिलमिलाते मौन अगणित कब गगन-भू को मिलाते ?

.

• •

(84) नश्वर तारक

.

इन तारों की दुनिया में भी मिटने का अमिट विधान छिपा !

.

जीवन की क्षणभंगुरता को
इनने भी जाना पहचाना,
बारी-बारी से मिटना, पर
अगले क्षण ही जीवन पाना,
आत्मा अमर रही, पर रूप न शाश्वत; यह मंत्र महान छिपा !
इन तारों की दुनिया में भी मिटने का अमिट विधान छिपा !

.

जलते जाएंगे हँसमुख जब-
तक शेष चमक, साँसें-धड़कन,
कर्तव्य-विमुख जाना है कब,
चाहे घेरें जग-आकर्षण ?
इस संयम के पीछे बोलो, कितना ऊँचा बलिदान छिपा !
इन तारों की दुनिया में भी मिटने का अमिट विधान छिपा !

.

हथकड़ियों में बंदी मानव-
सम विचलित हो पाये ये कब ?
अधिकार नहीं — इनका पग भर
भी बढ़ना है हाय, असम्भव !
चंचलता रह जाती केवल दृढ़ तूफ़ानी अरमान छिपा !
इन तारों की दुनिया में भी मिटने का अमिट विधान छिपा !

.

• •

(85) नभ-उपवन

.
इनके ऊपर आकाश नहीं !
इस नीले-नीले घेरे का बस होता है रे अंत वहीं !
इनके ऊपर आकाश नहीं !
.
पर, किसने चिपकाये प्यारे,
इस दुनिया की छत में तारे,
कागज़ के हैं लघु फूल अरे हो सकता यह विश्वास नहीं !
इनके ऊपर आकाश नहीं !
.
कहते हो यदि नभ का उपवन,
खिलते हैं जिसमें पुष्प सघन,
पर, रस-गंध अमर भर कर यह रह सकता है मधुमास नहीं !
इनके ऊपर आकाश नहीं !
.
• •
(86) इंद्रजाल
.
ये खड़े किसके सहारे ?
.
है नहीं सीमा गगन की मुक्त सीमाहीन नभ है,
छोर को मालूम करना रे नहीं कोई सुलभ है !
.
सब दिशाओं की तरफ़ से अन्त जिसका लापता है
शून्य विस्तृत है गहनतम कौन उसको नापता है ?
.
टेक नीचे और ऊपर भी नहीं देती दिखायी,
पर अडिग हैं, कौन-सी आ शक्ति इनमें है समायी ?
.
खींचती क्या यह अवनि है ? खींचता आकाश है क्या ?

शक्ति दोनों की बराबर ! हो सका विश्वास है क्या ?

.

जो खड़े इनके सहारे !
ये खड़े किसके सहारे ?

.

• •

(83) ज्योति-कुसुम

.

फूल ही
बस फूल की रे,
एक हँसती
खिलखिलाती,
वायु से औ' आँधियों से
काँपती
हिलती
सिहरती
यह लता है !
यह लता है !

.

देह जिसकी बाद पतझर के
नवल मधुमास के,
नव कोपलों-सी,
शुद्ध, उज्ज्वल, रसमयी
कोमल, मधुरतम !

.

आ कभी जाता प्रभंजन
बेल के कुछ फूल
या लघु पाँखुड़ी सूखी
गँवाकर ज्योति, जीवन शक्ति सारी,

मौन झर जातीं गगन से !

.

या कभी

जन स्वर्ग के आ,

अर्चना को,

तोड़ ले जाते कुसुम,

इस बेल से,

जो विश्व भर में छा रही है

नाम तारों की लड़ी बन !

.

• •

(88) जलते रहना

.

तुम प्रतिपल मिट-मिट कर जलते रहना !

.

जब तक प्राची में ऊषा की किरणें

बिखरा जाएँ नव-आलोक तिमिर में,

विहगों की पाँतें उड़ने लग जाएँ

इस उज्ज्वल खिलते सूने अम्बर में,

तब तक तुम रह-रह कर जलते रहना !

तुम प्रतिपल मिट-मिट कर जलते रहना !

.

जैसे पानी के आने से पहले

दिन की तेज़ चमक धुँधली पड़ जाती,

वेग पवन के आते स्वर सर-सर कर

फिर भू सुख जीवन शीतलता पाती,

गति ले वैसी ही तुम जलते रहना !

तुम प्रतिपल मिट-मिट कर जलते रहना !

.

• •

(89) शीताभ

.

ये हिम बरसाने वाले हैं, ये अग्नि नहीं बरसाएंगे !

.

जब पीड़ित व्याकुल मानवता, दुख-ज्वालाओं से झुलसायी,
बंदी जीवन में जड़ता है ; जिसने अपनी ज्योति गँवायी,

.

जब शोषण की आँधी ने आ मानव को अंधा कर डाला,
क्रूर नियति की भृकुटि तनी है, आज पड़ा खेतों में पाला,

.

त्राहि-त्राहि का आज मरण का जब सुन पड़ता है स्वर भीषण,
चारों ओर मचा कोलाहल, है बुझता दीप, जटिल जीवन,

.

जब जग में आग धधकती है, लपटों से दुनिया जलती है,
अत्याचारों से पीड़ित जब भू-माता आज मचलती है,

.

ये दुःख मिटाने वाले हैं; जग को शीतल कर जाएंगे !
ये हिम बरसाने वाले हैं, ये अग्नि नहीं बरसाएंगे !

.

• •

(90) नृत्त

.

देखो इन तारों का नर्तन !

.

सुरबालाओं का नृत्य अरे देखा होगा हाला पीकर
देखा होगा माटी का क्षण-भंगुर मोहक नाच मनोहर,
पर गिनती है क्या इन सबकी यदि देखा तारों का नर्तन !
युग-युग से अविराम रहा हो बिन शब्द किये रुनझुनरुनझुन!

देखो इन तारों का नर्तन !

.

सावन की घनघोर घटाएँ छा-छा जातीं जब अम्बर में,
शांति-सुधा-कण बरसा देतीं व्याकुल जगती के अंतर में,
तब देखा होगा मोरों का रंगीन मनोहर नृत्य अरे !
पर, ये सब धुँधले पड़ जाते सम्मुख तारक-नर्तन प्रतिक्षण !

देखो इन तारों का नर्तन !

.

• •

(91) अबुझ

.

ये कब बुझने वाले दीपक ?

.

अविराम अचंचल, मौन-व्रती ये युग-युग से जलते आये,
लाँघ गये बाधाओं को, ये संघर्षों में पलते आये,

.

रोक न पाये इनको भीषण पल भर भी तूफ़ान भयंकर
मिट न सके ये इस जगती से, आये जब भूकम्प बवंडर !

.

झंझा का जब दौर चला था लेकर साथ विरुद्ध हवाएँ,
ये हिल न सके, ये डर न सके, ये विचलित भी हो ना पाए!

.

ये अक्षय लौ को केन्द्रित कर हँस-हँस जलने वाले दीपक !

ये कब बुझने वाले दीपक ?

• •

(92) प्रिय तारक

.

यदि मुक्त गगन में ये अगणित
तारे आज न जलते होते !

.

कैसे दुखिया की निशि कटती !
जो तारे ही तो गिन-गिन कर,

मौन बिता, अगणित कल्प प्रहर,
करती हलका जीवन का दुख।
कुछ क्षण को अश्रु उदासी के
इन तारे गिनने में खोते !
यदि मुक्त गगन में ये अगणित
तारे आज न जलते होते !

फिर प्रियतम से संकोच भरे
कैसे प्रिय सरिता के तट पर,
गोदी के झूले में हिल कर,
कहती, 'कितने सुन्दर तारक !
आओ, तारे बन जाएँ हम।'
आपस में कह-कह कर सोते !
यदि मुक्त गगन में ये अगणित
तारे आज न जलते होते !

(93) मेघकाल में

बादलों में छिप गये सब दृष्टि सीमा तक सितारे !

आज उमड़ी हैं घटाएँ,
चल रहीं निर्भय हवाएँ,
दे रहीं जीवन दुआएँ,

उड़ रहे रज-कण गगन में,
घोर गर्जन आज घन में,
दामिनी की चमक क्षण में,

जब प्रकृति का रूप ऐसा हो गये ये दूर-न्यारे !
बादलों में छिप गये सब दृष्टि सीमा तक सितारे !

.

जब बरसते मेघ काले,
और ओले नाश वाले
भर गये लघु-गहन नाले,

.

विश्व का अंतर दहलता,
मुक्त होने को मचलता,
शीत में, पर, मौन गलता,

.

हट गये ये उस जगह से, हो गये बिलकुल किनारे !
बादलों में छिप गये सब दृष्टि सीमा तक सितारे !

.

• •

(94) जगते तारे

.

अर्द्ध निशा में जगते तारे !
जब सो जाते दुनिया वासी; जन-जन, तरु, पशु, पंछी सारे !
अर्द्ध निशा में जगते तारे !

.

ये प्रहरी बन जगते रहते,
आपस में मौन कथा कहते,
ना पल भर भी अलसाये रे, चमके बनकर तीव्र सितारे !
अर्द्ध निशा में जगत तारे !

.

झींगुर के झन-झन के स्वर भी,
दुखिया के क्रन्दन के स्वर भी,
लय हो जाते मुक्त-पवन में चंचल तारों के आ द्वारे !
अर्द्ध निशा में जगते तारे !

.
निद्रा लेकर अपनी सेना,
कहती, 'प्रियवर झपकी लेना'
हर लूँ फिर मैं वैभव, पर, ये कब शब्द-प्रलोभन से हारे !
अर्द्ध निशा में जगते तारे !
.
जलते निशि भर बिन मंद हुए,
कब नेत्र-पटल भी बंद हुए,
जीवन के सपनों से वंचित ये सुख-दुख से पृथक बिचारे !
अर्द्ध निशा में जगते तारे !